आखर हिंदी पत्रिका; e-ISSN-2583-0597 खंड 5/अंक 3/अगस्त 2025

Received: 9/08/2025; Accepted: 19/08/2025; Published: 28/08/2025

भारतीय ज्ञान परंपरा और राजस्थानी भाषा

डॉ .मिलन बिश्नोई
सहायक आचार्यहिंदी विभाग ,
खाजा बंदानवाज़ विश्वविद्यालय,
कलबुर्गीकर्नाटक,- 585104
मोबाइल नं. 6380568643 -
ईमेल-- milanbishnoi@gmail.com

डॉमिलन बिश्नोई ., भारतीय ज्ञान परंपरा और राजस्थानी भाषा, आखर हिंदी पत्रिका, **खंड 5/अंक3/अगस्त 2025**,(167 -174) https://doi.org/10.5281/zenodo.17072488

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

भारतीय ज्ञान परंपरा एक जीवंत सांस्कृतिक और बौद्धिक धरोहर है, जो हजारों वर्षों से भारतीय समाज को दिशा देती आई है। भारत की विविधता और बहुभाषी संस्कृति ने इस परंपरा को जनजन तक पहुँचाया। - यह परंपरा केवल दार्शनिक ग्रंथों और शास्त्रों तक सीमित नहीं, बल्कि जीवन के प्रत्येक पक्ष को समाहित करने वाली एक समग्र प्रणाली रही है। इसमें वेद, उपनिषद, आयुर्वेद, ज्योतिष, संगीत, नाटक, योग, नीति और लोकजीवन से जुड़े व्यवहारिक पक्ष समाहित हैं । यह परंपरा संस्कृत भाषा के माध्यम से प्रारंभ हुई, लेकिन भारत की विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं ने व्यापक क्षेत्र में पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारतीय ज्ञान परंपरा अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर में हजारों वर्षों के अनुभव और चिंतन का परिणाम है।
इसी कड़ी में राजस्थानी भाषा, जो भारत की प्राचीनतम क्षेत्रीय भाषाओं में से एक हैजो सशक्त और , प्रभावी ढंग से उभरकर सामने आती है। राजस्थानी भाषा के साहित्य, संत कवियों और लोकगाथाओं ने न केवल धार्मिक और दार्शनिक विचारों का प्रचार किया, बल्कि सामाजिक चेतना, पर्यावरणीय संतुलन, और नैतिक मूल्यों के प्रचार में भी अहम भूमिका निभाई।

राजस्थानी भाषा में रचित साहित्य विशेष रूप से संत काव्य, लोकगाथाएँयुद्ध और कौशल की रणनीति , भारतीय ज्ञान परंपरा को लोकमूल्यों, नैतिकता, भक्ति और सामाजिक समरसता के माध्यम से व्यक्त करती हैं। संत कवि जैसे गुरु जम्भेश्वर, दादू दयाल, जसनाथकरणीम ,मीरा बाई ,ातागोगाजी ,वीर तेजाजी , और रामदेव आदि ने अपने जीवन और रचनाओं के माध्यम से'सादा जीवन, उच्च विचार', पर्यावरण संरक्षण, गौ संरक्षणअहिंसा ,, भक्तिप्रेम और आत्मबोध जैसे मूल्यों को प्रचारित किया। इनके विचार और - वाणियाँ केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं, बल्कि एक समग्र जीवन शैली का परिचायक हैं।

लोक आख्यानों जैसे "पाबूजी की पड़", "देव नारायण की गाथा" "सबदवाणी" और में "महेंद्र की कथा-मूमल" लोकनीति, धर्म, कर्तव्य, नारी चेतना और पर्यावरण संतुलन के तत्व स्पष्ट दिखाई देते हैं। ये गाथाएँ दर्शाती हैं कि किस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा को जनमानस के भीतर एक सहज बोध के रूप में प्रतिष्ठित किया गया।

समकालीन समय में जब पारंपरिक ज्ञान के संरक्षण और पुनर्पाठ की आवश्यकता बढ़ रही है, तब राजस्थानी भाषा और साहित्य की इस भूमिका का पुनर्मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक है। यह शोधभा पत्र राजस्थानी-षा को भारतीय ज्ञान परंपरा की संवाहिका के रूप में स्थापित करने के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है, ताकि शिक्षा, शोध और सांस्कृतिक विमर्श में इसकी समकालीन प्रासंगिकता को पुनः उजागर किया जा सके ।

राजस्थानी साहित्य राजस्थान के भूणीभाग में बोली जाने वाली जनवा- और जनभाषा में लिखित और मौखिक साहित्य है। यह साहित्य विशाल और समृद्ध है । गद्य और पद्य दोनों विद्याओं में उपलब्ध है। राजस्थानी भाषा साहित्य शैली और विषय की दृष्टि से पाँच भागों में विभाजित है ।

चारण साहित्यप्रतीक राजस्थान की वीरता और सांस्कृतिक चेतना का :

राजस्थानी साहित्य की परंपरा में 'चारण साहित्य' अपना अद्वितीय स्थान रखता है। यह साहित्य वीरता", भक्ति, इतिहास और समाज की चेतना को समाहित करता है ।'"चारण' समुदाय द्वारा रचित यह साहित्य राजस्थान के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिदृश्य का एक जीवंत दस्तावेज है। 'चारण', 'भाट', 'ढाढ़ी', 'ब्राह्मभट्ट' और 'विरुज गायक' जैसे लोककवि राजस्थान में केवल काव्यकार ही नहीं, बल्कि इतिहासकार, मार्गदर्शक और नैतिक संरक्षक के रूप में भी जाने जाते हैं। उनकी रचनाओं ने लोकमानस" को वीरता, आत्मगौरव और धार्मिक निष्ठा से जोड़ने का कार्य किया ।"

चारण साहित्य का उद्भव और स्वरूप चारण साहित्य का प्रारंभ-8वीं–10वीं शताब्दी के मध्य माना जाता है। इस काल में राजाओं और योद्धाओं के प्रति स्तुतिपरक और वीरतापूर्ण गाथाओं की रचना की गई। 'डिंगल', 'मारवाड़ी' और 'मालवी' जैसी स्थानीय भाषाओं में रचित यह साहित्य दरबारी संस्कृति का अंग

बन गया। जैसा कि 'डॉलक्ष्मणदान कविया .' लिखते हैं, "चारण कवि राजाओं के संरक्षण में रहते हुए वीरगाथात्मक और भक्ति रचनाएँ प्रस्तुत करते थे।"

वीर रस की प्रधानता चारण साहित्य की सबसे प्रबल विशेषता-'वीर रस' की उपस्थिति रही है। योद्धाओं की गौरवगाथाएँ, मातृभूमि और धर्म की रक्षा के लिए किए गए बलिदानों को ओजपूर्ण शैली में प्रस्तुत करना ही इस साहित्य की पहचान रही है। 'मुहणौत नैणसी री ख्यात', 'बांकीदास री ख्यात' और 'दयालदास री ख्यात' जैसे ग्रंथों में "राजस्थानी वीरों की युद्धगाथाएँ ऐतिहासिक और भावनात्मक रूप में संरक्षित हैं।"

भक्ति और देवीचारण कवि केवल वीरता तक सीमित नहीं रहे-स्तुति- हैं, उन्होंने हिंगलाज माता, कृष्ण, दुर्गा और शक्ति की आराधना में भी भक्ति पदों की रचना की। उदाहरण के लिए, 'जयशंकर रा पद' और 'हिंगलाज स्तुति' जैसे पद "आध्यात्मिक अनुशासन और भक्तिभाव का सशक्त चित्रण प्रस्तुत करते हैं।"

सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना- चारण साहित्य सामाजिक संरचनाओं, लोकाचार, स्त्रीस्थिति-, और नैतिक दृष्टिकोण को भी दर्शाता है। स्त्री को मुख्यतः सती, देवी या वीरांगना के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'डॉअमरचंद राठौड़ .' के अनुसार, "चारण साहित्य सामाजिक मान्यताओं का साहित्यिक प्रतिबिंब है, जो इतिहास और संस्कृति के बीच सेतु का कार्य करता है।"

आलोचना और सीमाएँ -कई बार यह साहित्य बन जाता है। यह "प्रशंसा में अतिशयोक्तिपूर्ण राजाओं की" स्थिति विशेष रूप से तब देखी जाती है जब कवि उपाधियों, जागीरों या दरबारी सम्मान की अपेक्षा से लिखते थे। इसलिए कई इतिहासकार मानते हैं। "इतिहास और कल्पना का सम्मिलित रूप"'डॉप्रभुलाल . सांखला' कहते हैं, "चारण साहित्य ऐतिहासिक स्रोत होते हुए भी उसकी प्रामाणिकता को कल्पनाशीलता से पृथक करके देखना चाहिए।"

राजस्थानी जैन साहित्य: भारतीय ज्ञान परंपरा में विशेष योगदान

राजस्थानी भाषा में रचित जैन साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा के उन बहुआयामी पक्षों को उद्घाटित करता है, जो धर्म, दर्शन और नैतिक जीवन मूल्यों को जनसामान्य की भाषा में अभिव्यक्त करते हैं। यह साहित्य केवल धार्मिक विमर्श तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत सांस्कृतिक संवाद की भूमिका निभाता है", जो व्यक्ति और समाज दोनों के आचरण को दिशा देता है। "

राजस्थानी जैन साहित्य में 'अहिंसा', 'सत्य', 'अपरिग्रह', 'अचौर्य' और 'संयम' जैसे जैन सिद्धांतों को सहज शैली में प्रस्तुत किया गया है। जैसे 'उपदेशरत्नाकर' में धर्म के व्यावहारिक स्वरूप को कहावतों, दृष्टांतों और लोकबोधगम्य रूपकों के माध्यम से प्रतिपादित किया गया है। इनके ग्रंथ केवल धार्मिक ज्ञान नहीं बल्कि आचरण के निर्देश भी देता है।'पंचास्तिकाय' की राजस्थानी टीकाएँ, 'आचार्य कुंदकुंद' की मूल प्राकृत रचना

पर आधारित हैं। इन टीकाओं में जीव और अजीव के तत्वों की ऐसी व्याख्या की गई है", जो लोक की समझ में आ सके और साधक उसे अपने आचरण में ढाल सके।"

कथात्मक शैली में लिखी गई 'धरमगति कथा' इस साहित्य का एक लोकप्रिय उदाहरण है। इसमें बताया गया है कि इसी प्रकार "धर्म का पालन किस प्रकार आत्मा को ऊर्ध्वगति और अंततः मोक्ष की ओर ले जाता है।" 'जातक कथाओं' के राजस्थानी संस्करणों में की नैतिक घटनाओं के माध्यम से वर्तमान जीवन के पूर्व जन्म" भक्तिपरक साहित्य के क्षेत्र में "लिए प्रेरणा दी गई है।'अणगार धूणी री आरती' और 'सिद्धचक्र स्तवन' जैसे स्तवनसाथ आत्मानुश-धार्मिक श्रद्धा के साथ" पद्य प्रमुख हैं। ये रचनाएँ-ासन और मानसिक स्थिरता का माध्यम बनती हैं।पवित्र अनुशासन और भावात्मक " राजस्थान के जैन समाज में आज भी इनका पाठ " के साथ किया जाता है। "एकाग्रता

इस साहित्य को जनसामान्य तक पहुँचाने में कई कवियों और आचार्यों का विशेष योगदान रहा है। जैसे 'भट्टारक जिनचंद्र सूरी', 'जयमल', 'राजशेखर' और 'हिरवांजी'। जयमल की रचनाओं में शब्दों का लालित्य " और विचारों की प्रौढ़ता समान रूप से विद्यमान है, जो पाठक को केवल धार्मिक रूप से नहीं, बल्कि सौंदर्यात्मक रूप में भी प्रभावित करती है।"

राजस्थानी जैन साहित्य केवल धार्मिक शिक्षाओं का"संग्रह नहीं, बल्कि यह जीवन जीने की एक कला का मार्गदर्शक है।इसमें लोकभाषा के माध्यम से धार्मिक सिद्धांत ", नैतिक मूल्यों, सामाजिक दृष्टिकोण और सांस्कृतिक चेतना का समन्वित रूप उभरता है। आज भी यह साहित्य राजस्थान के जैन समाज में एक दिशा देने वाले धर्मग-जीवन"ंथके रूप में जीवंत है ", जो भारतीय ज्ञान परंपरा की सतत धारा को अक्षुण्ण बनाए हुए है।

राजस्थानी संत साहित्य: भारतीय ज्ञान परंपरा में आत्मिक आलोक

राजस्थानी संत साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का एक अद्वितीय हिस्सा है, जिसमें भक्ति, साधना और समाज के प्रति दृष्टिकोण को लोक और जनभाषा में सरलता से प्रस्तुत किया गया है। यह साहित्य केवल ईश्वर की आराधना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक समरसता, आडंबरों और बाहरी दिखावे से मुक्त आत्मिक शुद्धता की ओर भी मार्गदर्शन करता है। संतों की वाणियाँ जनसाधारण को जीवन के उच्चतम आदर्शों और सांस्कृतिक परंपराओं से जोड़ती हैं, और उन्हें समाज में व्याप्त नकारात्मकता से उबारने का प्रयास करती हैं।

मीराबाई का साहित्य भारतीय भक्ति परंपरा में एक अनूठा स्थान रखता है, जो न केवल कृष्ण भक्ति के उच्चतम शिखर को छूता है, बल्कि यह स्त्री चेतना और सामाजिक स्वतंत्रता की भी गहरी अभिव्यक्ति है। मीराबाई का प्रत्येक पद उनके जीवन के दिव्य अनुभवों का आंतरिक उद्घाटन है, जिसमें वे अपनी आत्मा और परमात्मा के बीच गहरे संबंध को महसूस करती है। उनका प्रसिद्ध पद "पायो जी मैंने राम रतन धन पायो"

उनकी भक्ति की उच्चतमअवस्था का प्रतीक है। जिसमें वे जीवन के सर्वोत्तम रत्न अर्थात कृष्ण की भक्ति को प्राप्त करने की अनुभूति साझा करती है। यह वाक्य केवल भक्ति नहीं, बल्कि आत्मा के परमात्मा से एकत्व की आंतरिक यात्रा का उद्घाटन भी करता है।

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बंधु आपनो न कोई॥।
छाँड़ि दी कुल की कानि कहा करिहै कोई।
संतन ढिंग बैठिबैठि लोक लाज खोई॥-
चुनरी के किये टूक ओढ़ लीन्ही लोई।

मीराबाई के पदों में न केवल एकनिष्ठता माधुर्य भक्ति की अनुभूति होती है, बल्कि उनके रचनात्मक विचारों में समाज के खिलाफ विद्रोह की भावना भी निहित है। उनके पद न केवल कृष्ण प्रेम में समर्पण की भावना को व्यक्त करती हैं, बल्कि वे एक स्त्री के अधिकारों, स्वतंत्रता और समाज द्वारा निर्धारित सीमाओं से मुक्ति की भी बात करती है। मीरा की भक्ति का मार्ग जाति, लिंग या सामाजिक बंधनों से मुक्त है, और केवल व्यक्ति के भीतर के सत्य की खोज से संबंधित है।

उनके पदों में स्त्री चेतना का मुखर रूप स्पष्ट होता है। मीराबाई की रचनाएँ एक महिला के रूप में उनके सामाजिक स्वीकार्यता के संघर्षों और समाज के बंधनों से मुक्ति की प्रतीक बन चुकी हैं। उनके पदों में आत्म-साक्षात्कार की खोज का संदेश है । वे रूढ़िवादिता और पितृसत्तात्मक परंपराओं के खिलाफ खड़ी होती हैं जो उस समय की सामाजिक संरचनाओं में व्याप्त थीं। मीराबाई की भक्ति जीवन के हर पहलू को समझने की एक यात्रा है, जहाँ भक्ति, ज्ञान, आत्मका समागम होता है। मीराबाई के साक्षात्कार और सामाजिक चेतना-पद केवल आध्यात्मिक गहराई के साथ जीवन के सच्चे अर्थ को समझाने का एक प्रयास भी हैं। यह जीवन के वास्तविक लक्ष्य की ओर एक गहरी दृष्टि प्रदान करता है।

गुरु जम्भेश्वर ने 29 नियमों की नियामवली का निर्धारण करके बिश्नोई समाज की स्थापना की थी। उन्होंने समाज को आडंबरों से दूर रहने, पर्यावरण और वन्य जीवों के संरक्षण तथा मानवता की सेवा करने की शिक्षा दी। उनकी वाणी में बताया गया "*जीव दया पालणी, रूंख लीलो न घावै*" का संदेश केवल मनुष्य के लिए नहीं ,अपितु सम्पूर्ण प्राणी जगत और प्रकृति के प्रति दया और सम्मान का भाव है। गुरु जम्भेश्वर का साहित्य केवल आध्यात्मिकता तक सीमित नहीं है, बल्कि जीवन के सभी पहलुओं पर्यावरण –, समाज और मानवीय रिश्तों में संतुलन बनाने की दिशा दिखाता है। उनकी वाणी केवल उपदेश या मुखवाणी तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाज, संस्कृति, परंपरा, और रीतिरिवाज का एक जीवंत इतिहास है। गुरुदेव-की वाणी जीवन जीने की कला, नैतिकता और आध्यात्मिकता की गहरी समझ प्रदान करती है, जो हमें सत्य, प्रेम और ज्ञान की ओर मार्गदर्शन करती है।

"ओम् गुरु चिन्ह गुरु मुख धर्म बखाणी"

उनकी वाणी दर्शाती है कि गुरु जीवन में सत्य और धर्म का मार्गदर्शन करता है। गुरु की पहचान और उनकी वाणी में ही जीवन के सर्वोत्तम मार्ग की खोज छिपी होती है।

"पहले किरिया आप कुमाइयै, तो अवरां न परमाइयै"

उनके उपदेश हमें यह सिखाता है कि जो व्यक्ति पहले अपने कर्मों में निपुण हो, वही दूसरों को मार्गदर्शन देने का अधिकार रखता है। अर्थात् पहले अपने कार्यों में सिद्धि प्राप्त करो, फिर दूसरों को बताओ। उन्होंने मानसिक शांति और सरल जीवन के दिशा प्रदान की है- वादविवाद का त्याग-, मन की बाह्य और आंतरिक पवित्रता, झूठ, कपट, चोरी, निंदा और शील। आंतरिक शुद्धता और संतुलन का संदेश देती है संतोष-, जिससे

जीवन में संतुलन और शांति बनी रहती है।
"ओम् विष्णु विष्णु भण रे प्राणी।"

गुरुदेव ने यह बताया कि जीवन में लोभ, लालच, क्रोध और काम से मुक्त होकर हमें आत्मा की शुद्धि की ओर बढ़ना चाहिए।

"पाणी, वाणी, दूध, ईधनी आदि लीजे छानकर"

अर्थात् अपनी आजीविका और कर्तव्यों के प्रति ईमानदारी और निष्ठा का पालन करने की प्रेरणा देती है। यह हमारे कार्यों को सही दिशा में मोड़ने का उपदेश देती है।

"थोड़े मांहि थोडेरो दीजै, होते नांहि न कीजे"

उनके उपदेश हमें संतुलन और संयम का महत्व सिखाता है, जिससे हम अपने इच्छाओं और आवश्यकताओं को संतुलित तरीके से पूरा कर सकें। गुरुदेव जांभोजी की वाणी हमें आचार्यत्व, आत्मनिर्भरता, और सामाजिक जिम्मेदारी की ओर प्रेरित करती है। उनकी वाणी में जीवन के हर पहलू को सही दिशा में लाने की क्षमता है, जो भारतीय ज्ञान परंपरा के अनुरूप है।

दादूदयाल की वाणी में उनकी निर्गुण भक्ति स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है। उन्होंने पंथ, जाति और कर्मकांड की बाधाओं को नकारते हुए सीधे आत्मा की शुद्धि और परमात्मा से एकात्मता को ही जीवन का सर्वोत्तम मार्ग बताया। भक्ति, आत्मा की शुद्धि और जीवन की आंतरिक सत्यता को उजागर करता है। दादू की यह वाणी हमें यह समझाती है कि सभी धर्मों और विधियों का असली उद्देश्य आत्मा की शुद्धि और ब्रह्म के प्रति समर्पण है।

सुंदरदास के साहित्य में वैराग्य और ज्ञान का संतुलन है। उनका कथन "गेह तज्यो अरु नेह तज्यो पुनि खेह लगाई कै देह संवारी" आत्मअहंकार से मुक्ति की प्रेरणा देता है। उनकी वाणी साधक को आत्मनिरीक्षण - करने और भीतर के अंधकार से बाहर आने के लिए प्रेरित करती है। सुंदरदास का साहित्य हमें यह बताता है कि भक्ति केवल बाहरीरूप से नहीं, बल्कि अंदर से शुद्धता और ज्ञान की प्राप्ति से होती है। उनका प्रसिद्ध कथन "बोलिए तौ तब जब बोलिबे की बुद्धि होयना तौ मुख मौन चुप होय रहिए ," आत्मानुभूति और ब्रह्म के सत्य को व्यक्त करता है। संत पीपा, जिनकी भक्ति सरल और समझने योग्य है । उनकी वाणी इस बात का प्रमाण है कि भक्ति केवल विश्वास नहीं, बल्कि गहन अनुभव और आत्मा के स्तर पर सम्पूर्ण समर्पण की भावना है। उन्होंने बताया "पीपा पाप न कीजियेअलगौ रहिये आप।,"

चोखा मेघवाल, जो दलित समाज से थे । उन्होंने वाणी के माध्यम से सामाजिक समानता की बात की। उनका कथन **"*चोखा कहे सुनो रे संतो, हरि तो सबमें सम*"** एकात्मता और समानता की भावना को व्यक्त करता है। वे इस बात को मानते थे कि हर व्यक्ति में ईश्वर का अंश होता है, और यह हमारी जिम्मेदारी है कि हम समाज को समानता और समरसता की दिशा में प्रेरित करें।

इस प्रकार, राजस्थानी संत साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा में आत्मिक शुद्धता, सामाजिक समरसता और निराकार भक्ति का अद्भुत संयोजन प्रस्तुत करता है। मीराबाई, गुरु जम्भेश्वर, दादूदयाल, सुंदरदास, संत पीपा, चोखा और राजाबरदयानी की वाणियाँ न केवल धार्मिक विश्वासों को पुष्ट करती हैं, बल्कि समाज में व्याप्त विभिन्न बुराइयों के खिलाफ प्रतिरोध भी हैं। उनका साहित्य आज भी लोकजीवन में जीवंत है और - भक्ति, साधना और जीवन का उद्देश्य आत्मिक शुद्धता है।

संदर्भ सूची

1. अमरचंद राठौड़, **राजस्थानी चारण साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन**, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2011, पृ .22–49।
2. लक्ष्मणदान कविया, **डिंगल काव्य और चारण परंपरा**, साहित्य संबल प्रकाशन, जोधपुर, 2004, पृ . 90–110।
3. प्रभुलाल सांखला, **मुहणौत नैणसी री ख्यातऐतिहासिक विवेचन :**, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 1998, पृ .57–78।
4. बालमुकुंद शर्मा (.संपा), **बांकीदास ग्रंथावली - भाग)1)**, राजस्थानी शोध संस्थान, बाड़मेर, 2009, पृ .131–150।

5. शोभालाल बड़गुजर, **वीर रस का विकास और चारण साहित्य**, ज्ञानदीप प्रकाशन, जयपुर, 2015, पृ .64–72।

6. प्रभाकर जैन, **राजस्थानी जैन साहित्यएक समालोचनात्मक अध्ययन :**, राजस्थान ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2011, पृ .42।

7. महेन्द्रसिंह चौधरी, **प्राचीन जैन साहित्य और दर्शन**, जैन शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर, 2008, पृ . 119।

8. रामचन्द्र दवे, **राजस्थानी लोककथाएँ और उनका सांस्कृतिक आधार**, राजस्थान साहित्य संस्थान, जोधपुर, 1998, पृ .205।

9. सुरेश गुप्ता, **भक्तिकाव्य और जैन परंपरा**, भारतीय विद्या भवन, अजमेर, 2004, पृ .88।

10. डॉ(.संपा) रमेश चंद्र शुक्ल ., **मीराबाई की पदावली**, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 2005, पृ .45–47।

11. डॉ(.संपा) प्रेमशंकर अवस्थी ., **दादू वाणी**, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 1998, पृ .61।

12. डॉ(.संपा) मोहनलाल शर्मा ., **पीपाजी की वाणी**, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, 1992, पृ . 37।

13. डॉरतनलाल शर्मा ., **सुंदरदास साहित्य समीक्षा**, राजस्थानी ग्रंथागार, बीकानेर, 2004, पृ .49।

14. डॉलक्ष्मण राम ., **चोखा संत का जीवन और वाणी**, लोक साहित्य प्रकाशन, नागौर, 2013, पृ .58।

15. डॉ शारदा .त्रिपाठी, **राजाबरदयानी की संत परंपरा**, राजस्थान साहित्य संस्थान, उदयपुर, 2011, पृ .32।

****